|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 1: अर्जुनविषादयोग

4/4 (श्लोक 28-47), शनिवार, 17 जून 2023

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/hekkXNPeufc

विषादग्रस्त अर्जुन की मन:स्थिति और धनुष त्याग

पारम्परिक प्रथानुसार द्वीप प्रज्वलन और गुरु वन्दन के साथ विवेचन सत्र का आरम्भ हुआ। अर्जुनविषादयोग नामक इस अध्याय के पूर्व सत्र में हमने सुना कि अर्जुन के कहने पर श्रीकृष्ण जी अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच लाकर खड़ा कर देते हैं।

1.28, 1.29

कृपया परयाविष्टो, विषीदन्निदमब्रवीत्। अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेमं स्वजनं(ङ्) कृष्ण, युयुत्सुं(म्) समुपस्थितम्।।1.28।।
सीदन्ति मम गात्राणि, मुखं(ञ्) च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे, रोमहर्षश्च जायते।।1.29।।

अर्जुन बोले - हे कृष्ण! युद्ध की इच्छा वाले इस कुटुम्ब-समुदाय को अपने सामने उपस्थित देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख सूख रहा है तथा मेरे शरीर में कँपकँपी (आ रही है) एवं रोंगटे खड़े हो रहे हैं। हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी जल रही है। मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है और (मैं) खड़े रहने में भी असमर्थ हो रहा हूँ।

विवेचन : अर्जुन श्रीकृष्ण को अपना सखा मानकर अपने मन की बात कह रहे हैं। युद्ध स्थल पर अपने सामने अपने ही परिजनों को देख कर अर्जुन अत्यन्त निराश हो गये हैं। निराशा की यह परिस्थिति किसी के भी जीवन में आ सकती है। जो हम सोचते हैं उसके विपरीत कुछ होने पर ऐसी परिस्थिति में हम निराश हो जाते हैं, मनोचिकित्सक के पास जाते हैं और मन की बात कहते हैं। इसी तरह अर्जुन श्रीकृष्ण से अपने मन की बात कह रहे हैं। वैसे तो अर्जुन का स्वभाव शूरवीर का स्वभाव है परन्तु युद्ध की इस परिस्थिति में वे कायर हो गये हैं। युद्ध करना जो उनका क्षत्रिय धर्म है उसे वे भूल गये हैं। स्वजनों, गुरु और पितामह को सामने देख कर उनके मन में विषाद का भाव जाग उठा है, उनके हाथ से गाण्डीव नीचे गिर रहा है, जो एक अपशकुन का द्योतक भी है।

1.30, 1.31

गाण्डीवं(म्) स्रंसते हस्तात्, त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं(म्), भ्रमतीव च मे मनः।।1.30।।
निमित्तानि च पश्यामि, विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि, हत्वा स्वजनमाहवे।।1.31।।

।। हे केशव! मैं लक्षणों (शकुनों) को भी विपरीत देख रहा हूँ (और) युद्ध में स्वजनों को मारकर श्रेय (लाभ) भी नहीं देख रहा हूँ।

विवेचन: अर्जुन कह रहे हैं कि मुझे सभी लक्षण विपरीत दिख रहे हैं और अपशकुन जैसे लग रहे हैं, आकाश में होता उल्कापात और असमय का ग्रहण। प्रकृति और मन:स्थिति दोनों ही मुझे युद्ध के विरुद्ध लग रही है।

1.32

न काङ्क्षे विजयं(ङ्) कृष्ण, न च राज्यं(म्) सुखानि च।
किं(न्) नो राज्येन गोविन्द, किं(म्) भोगैर्जीवितेन वा।।1.32।।

हे कृष्ण! (मैं) न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य (चाहता हूँ) और न सुखों को (ही चाहता हूँ)। हे गोविन्द! हम लोगों को राज्य से क्या लाभ? भोगों से (क्या लाभ)? अथवा जीने से (भी) क्या लाभ?

विवेचन: अर्जुन को लग रहा है कि युद्ध में जीत कर मैं राज्य तो पा लूँगा, अधिकार और सुख भी मुझे मिल जाएँगे तब भी अपनों को मारकर मैं उस सुख को कैसे भोग पाऊँगा। हम भी कई बार चीजों के लिए लड़ते हैं उन्हें प्राप्त करने पर खुश भी हो जाते हैं लेकिन क्या हम सुखी होते हैं। गीता का उपदेश इसी दुविधा की चिकित्सा करने के लिए किया गया है। गीता ही ज्ञान का प्रकाश है और गीता ही मोक्षदायिनी है। गीता पढ़ कर, समझ कर, इसका अर्थ जानने के लिए ही हम यहाँ पर एकत्रित हुए हैं।

1.33

येषामर्थे काङ्क्षितं(न्) नो, राज्यं(म्) भोगाः(स्) सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे, प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।1.33।।

जिनके लिये हमारी राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, वे (ही) ये सब (अपने) प्राणों की और धन की आशा का त्याग करके युद्ध में खड़े हैं।

विवेचन: आगे अर्जुन कहते हैं जिस तरह मैं युद्ध से राज्य प्राप्ति के लिए खड़ा हूँ उसी तरह सामने वाले सभी जीवन का त्याग करने के लिए खड़े हैं। हम जो भी चाहते हैं वह अपने लिए नहीं, व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं वरन अपने कुटुम्बियों के लिए चाहते हैं, ऐसी स्थिति में अपनों को ही मार कर आज यदि मैं विजयी भी हो जाता हूँ तो कल उस विजय का सुख मैं कैसे भोग पाऊँगा।

1.34, 1.35

आचार्याः(फ्) पितरः(फ्) पुत्रास्, तथैव च पितामहाः।
मातुलाः(श्) श्वशुराः(फ्) पौत्राः(श्), श्यालाः(स्) सम्बन्धिनस्तथा।।1.34।।
एतान्न हन्तुमिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः(ख्) किं(न्) नु महीकृते।।1.35।।

आचार्य, पिता, पुत्र और उसी प्रकार पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले तथा (अन्य जितने भी) सम्बन्धी हैं, (मुझ पर) प्रहार करने पर भी (मैं) इनको मारना नहीं चाहता, (और) हे मधुसूदन! (मुझे) त्रिलोकी का राज्य मिलता हो, तो भी (मैं इनको मारना नहीं

चाहता), फिर पृथ्वी के लिये तो (मैं इनको मारूँ ही) क्या? (1.34-1.35)

विवेचन: गुरु द्रोणाचार्य, अन्य सगे सम्बन्धी, पुत्र-पौत्र सभी के द्वारा मेरे ऊपर प्रहार किए जाने पर भी मैं उन्हें मारना नहीं चाहता। इन्हें मार कर मुझे यदि तीनों लोकों की प्राप्ति भी हो जाए तब भी मैं ऐसा नहीं करूँगा, तो फिर केवल राज्य प्राप्ति के लिए इन्हें मारना तो दूर की बात है। इस तरह का अपनेपन का भाव केवल अर्जुन के मन में है, दुर्योधन के मन में ऐसा भाव नहीं है,अर्जुन के मन में यह भाव है क्योंकि उनकी प्रवृत्ति सात्विक है अपितु दुर्योधन की प्रवृत्ति तामसिक है।

1.36

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः(ख्), का प्रीतिः(स्) स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्, हत्वैतानाततायिनः।।1.36।।

हे जनार्दन! (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारकर हम लोगों को क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारने से तो हमें पाप ही लगेगा।

विवेचन: यहाँ आततायी शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है आतङ्कवादी। आततायी व्यक्ति के छह लक्षण होते हैं, जो किसी को आग लगाकर हानि पहुँचाता है, विष देकर मारना चाहता है, शस्त्र से वध करता है अथवा किसी के धन, जमीन या स्त्री का हरण करता है उसे आततायी कहते हैं। कौरवों ने तो पाण्डवों के साथ यह सभी किया है। लाक्षागृह में आग लगाकर उन्हें मारने का प्रयास करना, भीम को विष देखकर कुएँ में ढकेलना, द्यूत क्रीड़ा में छल कपट से पाण्डवों के धन, जमीन और स्त्री का हरण करना और भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण करना, यह सभी लक्षण कौरवों को भले ही आततायी बताते हों पर इन्हें मार कर हम क्यों पापी बने।

1.37

तस्मान्नार्हा वयं(म्) हन्तुं(न्), धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं(म्) हि कथं(म्) हत्वा, सुखिनः(स्) स्याम माधव।।1.37।।

इसलिये अपने बान्धव (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारने के लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि हे माधव! अपने कुटुम्बियों को मारकर (हम) कैसे सुखी होंगे?

विवेचन: अपने मन के विचार श्रीकृष्ण को बताते हुए आगे अर्जुन कहते हैं, हम जैसे सज्जन लोग यह अनुचित कार्य क्यों करें। इन्हें मारने की आशङ्का से ही मैं दुःखी हो रहा हूं, मैं जानता हूँ कि काम, क्रोध और लोभ यह तीन नर्क के द्वार हैं इसलिए मैं इनके आधीन होकर यह कर्म करना नहीं चाहता।

1.38, 1.39

यद्यप्येते न पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं(न्) दोषं(म्), मित्रद्रोहे च पातकम्।।1.38।।
कथं(न्) न ज्ञेयमस्माभिः(फ्), पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।1.39।।

यद्यपि लोभ के कारण जिनका विवेक-विचार लुप्त हो गया है, ऐसे ये (दुर्योधन आदि) कुल का नाश करने से होने वाले दोष को और मित्रों के साथ द्वेष करने से होने वाले पाप को नहीं देखते, (तो भी) हे जनार्दन! कुल का नाश करने से होने वाले दोष को ठीक-ठीक जानने वाले हम लोग इस पाप से निवृत्त होने का विचार क्यों न करें? (1.38-1.39)

विवेचन: दुर्योधन एक सुई की नोक के बराबर जगह देने के लिए भी तैयार नहीं हुए। लोभ - धन का लोभ जमीन का लोभ, प्रशंसा और अधिकार का भी लोभ। इन सभी को प्राप्त करते रहने की वृत्ति के कारण ही विवेक खो जाता है। इसीलिए शत्रुपक्ष

वाले यह विचार नहीं कर पा रहे हैं कि वह जो नाश करने जा रहे हैं उससे मिलने वाला राज्य उनके साथ कितने दिन रहेगा। जब हमारे पास कोई वस्तु न हो तो हम उसे पाने का प्रयास करते हैं, इस प्रयास के समय कभी हम क्रोध के आधीन होते हैं तो कभी लोभ के। उदाहरण के लिए जब हमारे पास गाड़ी नहीं होती तब हम रिक्शा के साधन से भी खुश रहते हैं, लेकिन एक बार मन में विचार आ जाए कि गाड़ी लेनी है तब बहुत प्रयत्न करके गाड़ी ले लेते हैं, उससे सुख भी प्राप्त होता है लेकिन उसके पश्चात कभी कोई दुर्घटना होने पर यदि हमारे पास गाड़ी नहीं रहती तब उसकी आदत हो जाने के कारण हम उसके बिना रह नहीं पाते यह है, लोभ, इसी के कारण विवेक बुद्धि खो जाती है। अर्जुन कहते हैं हम तो यह सब जानते हैं तब इस प्रवृत्ति से निवृत्त होने का विचार क्यों न करें, क्यों हम पापी बनें।

1.40

कुलक्षये प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः(स्) सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं(ङ्) कृत्स्नम्, अधर्मोऽभिभवत्युत।।1.40।।

कुल का क्षय होने पर सदा से चलते आये कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और धर्म का नाश होने पर (बचे हुए) सम्पूर्ण कुल को अधर्म दबा लेता ह

1.41

अधर्माभिभवात्कृष्ण, प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसङ्करः।।1.41।।

हे कृष्ण! अधर्म के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं; (और) हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर पैदा हो जाते हैं।

विवेचन: युद्ध में कुलक्षय होता है। हर कुल में उसकी परम्परा के अनुसार पवित्र बातें और मर्यादाएं चलती हैं। युद्ध के दौरान कुलधर्म भी नष्ट हो जाता है। जन्म से मृत्यु तक के पवित्र रीति रिवाज और इस लोक तथा परलोक में भी कल्याण करने वाली ऐसेे कल्याणकारी प्रथाएँ जो किसी कुल का धर्म होती हैं, वह नष्ट हो जाती हैं। यह सब युद्ध के भीषण परिणाम हैं। करने लायक काम न करना परन्तु न करने लायक काम करना, इस बात से उत्पन्न अधर्म सम्पूर्ण कुल पर छा जाता है। अधर्म के बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं, अधर्म के रास्ते पर चलने लगती हैं, और इस प्रकार वर्णसङ्कर बढ़ जाते हैं।

जब हम धर्म का पालन करते हैं तो अन्त:करण शुद्ध रहता है बुद्धि सात्विक होती है जिससे क्या करें या क्या नहीं करें यह विवेक जागृत रहता है, परन्तु अधर्म का पालन करने से आचरण अशुद्ध हो जाता है और इस कारण बुद्धि तामसी बन जाती है, विवेक भ्रष्ट हो जाता है। अधर्म में हम शास्त्र की मर्यादाओं के विपरीत कार्य करते हैं। आज जब हमारे बच्चे पूछते हैं कि क्यों मर्यादाओं का पालन करना है, तो कभी-कभी हमारे पास ही इस बात का उत्तर नहीं होता, एक पालक होने पर हमें शास्त्र की मर्यादाओं को जानने के लिए ही शास्त्रों के अभ्यास की आवश्यकता होती है। आज हम इसी धर्म मार्ग पर चलना चाहते हैं, सत्व मार्ग पर चलने के प्रयास में ही हम गीता के अभ्यास से जुड़े हैं। गीता परिवार से इस जुड़ाव ने हम सभी को आनन्द दिया है, धर्म के मार्ग पर चलने का हमारा यह प्रयास है, उसी पर हमें चलते रहना है।

अधर्म के मार्ग पर चलने से बुद्धि तामसी होती है और तामसी बुद्धि कर्त्तव्य को अकर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को कर्त्तव्य मान बैठती है। इस तामसी बुद्धि के कारण ही स्त्रियाँ व्यभिचारी हो जाती हैं और इससे ही वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं। आगे अर्जुन कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण आप तो सबको अपनी ओर खींचने वाले अर्थात आकृष्ट करने वाले हैं। आप ही बताइए की इस तरह की परिस्थितियाँ हमें कहाँ ले जाएँगी। अर्जुन यहाँ कुल के महत्व को बताने के लिए श्रीकृष्ण जी को वार्ष्णेय अर्थात वे जिस कुल में उत्पन्न हुए हैं उस नाम से नाम से सम्बोधित करते हैं।

1.42

सङ्करो नरकायैव, कुलघ्नानां(ङ्) कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां(लुँ), लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥1.42॥

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने वाला ही (होता है)। श्राद्ध और तर्पण न मिलने से इन (कुलघातियों) के पितर भी (अपने स्थान से) गिर जाते हैं।

विवेचन: वर्णसङ्कर कुल घातक हैं जो कुल को नर्क की ओर ले जाने वाला होता है। पिण्डदान के लिए सन्तति न होने के कारण, श्राद्ध और तर्पण न मिलने के कारण पितरों को नर्क की प्राप्ति होती है। धार्मिक बुद्धि नहीं, मर्यादा का पालन नहीं, इससे कुल ही नहीं रहता। कुलधर्म के विरुद्ध आचरण से कुल ही समाप्त हो जाता है। युद्ध में कुल का संहार कुल घातक साबित होता है। इस तरह वर्णसङ्कर सम्पूर्ण कुल को नर्क लोक में ले जाता है। हिंदू धर्म में पिण्डदान का महत्व है जो पितृपक्ष में किया जाता है। पिण्डदान न मिलने से पितरों का पतन होता है और वे पितृ लोक से नीचे आ जाते हैं। वर्णसङ्कर से उत्पन्न सन्तति में पिता के प्रति और पूर्वजों के प्रति कोई आदर नहीं होता और अश्रद्धा से तर्पण करने से पिण्ड पितरों तक पहुँचता ही नहीं। यह सभी युद्ध के परिणाम हैं तो हम युद्ध क्यों करें।

एक अच्छे मित्र और सखा की तरह श्रीकृष्ण अर्जुन के इस विषाद को भी शान्ति से सुन रहे हैं।

1.43

दोषैरेतैः(ख्) कुलघ्नानां(वँ), वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः(ख्), कुलधर्माश्च शाश्वताः॥1.43॥

इन वर्णसंकर पैदा करने वाले दोषों से कुलघातियों के सदा से चलते आये कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं।

विवेचन: प्रत्येक कुल की अलग-अलग प्रथाएँ होती हैं, आचरण की एक पद्धति होती है और हर कुल की अपनी मर्यादाएँ भी होती हैं, इसे ही कुलधर्म कहते हैं। जाति धर्मशास्त्रों से नियत होती है। इनका आचरण न होने से यह दोनों ही धर्म नष्ट हो जाते हैं।

1.44, 1.45

उत्सन्नकुलधर्माणां(म्), मनुष्याणां(ञ्) जनार्दन।
नरकेऽनियतं(वँ) वासो, भवतीत्यनुशुश्रुम॥1.44॥
अहो बत महत्पापं(ङ्), कर्तुं(वँ) व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन, हन्तुं(म्) स्वजनमुद्यताः॥1.45॥

हे जनार्दन! जिनके कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, (उन) मनुष्यों का बहुत काल तक नरकों में वास होता है, ऐसा (हम) सुनते आये हैं। यह बड़े आश्चर्य (और) खेद की बात है कि हम लोग बड़ा भारी पाप करने का निश्चय कर बैठे हैं, जो कि राज्य और सुख के लोभ से अपने स्वजनों को मारने के लिये तैयार हो गये हैं।

विवेचन: बड़े आश्चर्य और खेद की बात है कि हम इतना बड़ा पाप करने का निश्चय कर रहे हैं।

1.46

यदि मामप्रतीकारम्, अशस्त्रं(म्) शस्त्रपाणयः।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्, तन्मे क्षेमतरं(म्) भवेत्।।1.46।।

अगर (ये) हाथों में शस्त्र-अस्त्र लिये हुए धृतराष्ट्र के पक्षपाती लोग युद्धभूमि में सामना न करने वाले (तथा) शस्त्र रहित मुझ को मार भी दें (तो) वह मेरे लिये बड़ा ही हितकारक होगा।

विवेचन: अर्जुन कहते हैं मेरे शस्त्र त्याग करने पर यदि वे मुझे मारते भी हैं तब भी मैं उनके साथ अब युद्ध नहीं कर सकता।

1.47

सञ्जय उवाच एवमुक्त्वार्जुनः(स्) संख्ये, रथोपस्थ उपाविशत्।विसृज्य सशरं(ञ्) चापं(म्), शोकसंविग्नमानसः।।1.47।।

संजय बोले - ऐसा कहकर शोकाकुल मन वाले अर्जुन बाण सहित धनुष का त्याग करके युद्धभूमि में रथ के मध्य भाग में बैठ गये।

विवेचन: ऐसा कहते हुए विषादग्रस्त अर्जुन बाण सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गये। इसके साथ ही इस सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्न उत्तर सत्र का आरम्भ हुआ।

विचार मंथन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता: कंचन दीदी जी

प्रश्न: सुख और दु:ख में स्थायित्व कैसे बना रहे?

उत्तर: हम देखते हैं कि जहाँ पर्वत है उसके साथ खाई भी होती है। पर्वत यदि सुख की तरह है तो खाई दु:ख की तरह। दु:ख को जीत कर ही हम ऊपर आते हैं। गीता का अभ्यास करने से दु:ख उतना तीव्र नहीं रहता और शरणागति की भावना दु:ख के प्रभाव को कम करती है।

प्रश्नकर्ता: नरेंद्र व्यास जी

प्रश्न: श्लोक 43 में जाति धर्म और कुल धर्म की बात कही गई है इन दोनों में क्या सम्बन्ध है और क्या भिन्नता है?

उत्तर: हम सभी का धर्म हिन्दू धर्म है जबकि हमारे कुल अलग-अलग हैं, तो हमारा जातिधर्म तो हिन्दू धर्म होगा लेकिन हमारा कुल धर्म अलग-अलग होगा।

प्रश्नकर्ता: कान्ति कटियार जी

प्रश्न: सनातन धर्म का क्या अर्थ है ?

उत्तर: हिन्दू धर्म सनातन धर्म है, इसका न कोई आदि है और न ही अन्त।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत सत - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप

श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'अर्जुनविषादयोगनामक' पहला अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||